International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.in
Volume 1; Issue 9; November 2016; Page No. 11-14

स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त दर्शन की वर्तमान प्ररिपेक्ष्य मे प्रासंगिकता

डॉ0 अरविन्द कुमार गिल

प्रवक्ता, महाराजा सूरजमल शिक्षा संस्थान जनकपुरी, नई दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

शिक्षा विकास की वह प्रक्रिया है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्राों में हमारा सच्चा पथ प्रदर्शन करती है। एक भटकते राही को दिशा प्रदान करती है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कोई न कोई दर्शन अवश्य होता है चाहे वह व्यक्ति उस विषय में संचेतन हो या न हो जैसा कि अल्टुस हक्सले लिखते है– ''सभी लोग अपनी जीवन दर्शन के अनुरूप अर्थात जगत के सम्बन्ध में अपनी धर.ाा के अनुसार जीवन बिताते है। यह बात चिन्तन शून्य लोगों के लि, भी सही है। तत्व ज्ञान के बिना जीना असम्भव है। तत्व चिन्तन अथवा तत्व चिन्तन शून्यता के बीच हमारे पास कोई विकल्प नहीं है अपितु विकल्प केवल सततत्व चिन्तन और कुतत्व चिन्तन के बीच है। ''दर्शन के बिना शिक्षा की प्रक्रिया सही मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकती है। प्रस्तुत शोध में मैने स्वामी विवेकानन्द के शि{ाा दर्शन, वेदान्त दर्शन का विवेचन करने का प्रयास किया है। क्योंकि विवकानन्द के विचारों का स्पष्ट प्रभाव हमारी वर्तमान शैि{क धरा पर पड़ा है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने विचारों पर संस्थागत प्रयोग भी किये है। मानव में मानवता को जागृत करना, विवेकानन्द की मानव को बड़ी देन है।
सुभाषितानि के अनुसार।

> **''प्रवृत्ताक चित्राकप, आहवान प्रतिभावन।**
> **आशु ग्रन्थस्य वक्ताः चयः स प.डित उचयते ।।''**

अर्थात् जो वाणी व्यवहार में कुशल तथा तथ्य वर्णन वाला, तर्क वितर्क में प्रवीण, प्रतिभाशाली ग्रन्थ, अभिप्राय को शोध समझने वाला होता है। वही पण्डित कहलाता है।

दार्शनिक विचार

अद्वैत वेदान्त को यथार्थ और युगानुकूल रूप से प्रस्तुत करने वालों में आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्वामी जी ने वेदान्त की युक्ति संगत, विज्ञान सम्मत और व्यवहारनुकूल व्याख्या प्रस्तुत की स्वामी जी ने एक तरपफ वेदांतीय आदर्शो की सरल व्याख्या कर उसे व्यवहार के ध्रातल पर अवतरित किया तो दूसरी ओर जनसाधर.ा को सामान्य स्तर से उठाकर आदर्शे की उपफॅचाई तक लाने का प्रयत्न किया। वेदान्त में चली आ रही वैचारिक अर्थात सैद्धान्तिक परम्परा को तोड़ा। जो वेदान्त की परम्परागत व्याख्यायें चल रही थी, उनसे अलग हटकर उसे शुद्ध रूप प्रदान किया और इस रूप में वे सनातन अर्थवादी थे, रूपवादी नही।
विवेकानन्द ने कोई निषेधत्मक दर्शन नही दिया, अर्थात् किसी को आलोचना न करके समन्वय किया।
विवकानन्द चिंतन में सम्पूर्ण विश्व एक ही सत्ता है उसी को ब्रह्य कहते हैं। वही सत्ता जब विश्व के मूल में प्रकट होती है तो उसी को ईश्वर कहा जाता है। वही सत्ता जब इस लघु विश्व अर्थात् शरीर के मूल में प्रकट होती है तो आत्मा कहलाती है। सार्वभौम आत्मा जो प्रकृति के सार्वभौम विकारों से परे हैं, वही ईश्वर परमेश्वर है।

माया को स्वामी विवेकानन्द सत् एवं असत् में विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय स्वीकार करते है परन्तु माया को विवेकानन्द जगत की व्याख्या के लिए उपयुक्त नहीं मानते। विवेकानन्द के अनुसार माया कोई सिान्त विशेष न होकर जगत की स्थिति मात्रा की बोध्क है। इसके अतिरिक्त विवेकानन्द माया का मिथ्या अर्थ भी ग्रहण नहीं करते हैं।
स्वामी जी जीव को स्वतन्त्राकर्ता स्वीकार करते हैं। वे इस प्रकार के किसी भी सिद्वान्त को स्वीकार करने को तैयार नही जिससे जीव में निर्बलता और पराश्रयता का प्रश्रय मिले। ''यदि जीव सुखी और दुःखी है तो केवल स्वयं के कर्मो के कारण ही है। जीव ही कार्य है और जीव ही कार.ा है। अतः जीव स्वतन्त्रा है। मनुष्य की इच्छा शक्ति किसी घटना के अधेन नहीं है। मनुष्य की प्रबल, विराट, इच्छा शक्ति के सामने सभी शक्तियॉ, यहॉ तक प्राकृतिक शक्तियां भी सिर झुका सकती है।''

नया वेदान्त दर्शन

स्वामी विवेकानन्द ने अपनी दार्शनिक विचार धरा में मनुष्य की मुक्ति का उच्च आदर्श खोजा है। वे कहते हैं ''एक परमाणु से लेकर मनुष्य तक, जड़ तत्व के अचेतन प्राणहीन कण से लेकर मनुष्य इस पृथ्वी की सर्वोच्च सत्ता मानवात्मा तक जो कुछ हम इस विश्व में प्रत्यक्ष करते हैं, वे सब मुक्ति के लि, संघर्ष कर रहें हैं। यह समग्र विश्व मुक्ति के लिए संघर्ष का ही परिणाम है। हर मिश्रण में प्रत्येक अणु दूसरे परमाणुओं से पृथम होकर अपने स्वतन्त्रा पथ पर जाने की चेष्टा कर रहा है, पर दूसरे उसे आब करके रखे हुए हैं। हमारी पृथ्वी सूर्य से दूर भागने की चेष्टा कर रही है तथा चन्द्रमा पृथ्वी से। प्रत्येक वस्तु में अनन्त विस्तार की प्रवृति है। विश्व में जो कुछ देखतें है, उस सबका मूल आधर मुक्ति लाभ के लिए यह संघर्ष ही है। वे कहते हैं ''चेतना तथा अचेतन समस्त प्रकृति का लक्ष्य यह मुक्ति ही है, और जाने या अनजाने सारा जगत इसी लक्ष्य की ओर पहॅुचने का यत्न कर रहा है।''

ब्रह्य के विषय में दृष्टिकोण

वह साक्षी स्वरूप है, समस्त ज्ञान का वह शास्वत स्वरूप है, हम जो कुछ जानते है वह सब पहले जान कर उसी के माध्यम से जानते है। वहीं हमारी आत्मा का सार सत्ता स्वरूप है। वहीं वास्तविक अहं है और वह अहं हमारे इस अहं का सार सत्ता स्वरूप है। ब्रह्य से ही सब कुछ हुआ है। वे कहते हैं।

> **''अग्निर्यथैको भुवनम प्रविस्ये रूपरूपम् प्रति रूपें वभूवम्।**
> **एक स्तथा सर्वभूतान्तरात्मक रूपम् रूपम् प्रतिरूपे बहिस्य।।''**

अर्थात् जिस प्रकार एक ही अग्नि जगत में प्रविष्ट होकर नानारूपों में प्रकट होती है उसी प्रकार सारे जीवों की अन्तरात्मा, वो एक ब्रह्य नाना रूपों में व्याप्त हो रहा है। पिफर वो जगत के बाहर भी है। ''वे कहते हैं कि जगत में जो कुछ है वह सब ईश्वर में आछन्न है, वह एक है, स्वम्भू है उसका कोई कारण नही है। न उसमें दिक है, न काल और न कार्य कारण।'' ''वही एक मात्रा आनन्द है

क्योंकि उसमें कोई अभाव नहीं है। वह सर्वज्ञ है, सर्वव्यापी है, सर्वव्यापी है, सबका सार तत्व है, वो सच्चिदानन्द है।''

स्वामी विवेकानन्द कहते है कि ''बुदि उसी निर्गुण की अवधरणा इस विश्व के सृष्टा, पालन करता, शासक और संहारक के रूप में उसके उपादान और निमित्त कारण के रूप में परम शासक के रूप में जीवन मय, प्रेम मय, परम सौन्दर्य मय के रूप में करती है।'' परम सत् की सर्वोपरि अभिव्यक्ति ईश्वर अथवा सर्वोच्च शासक के रूप में और सर्व शक्तिमान जीवन या उफर्जा के रूप में हुई है। परमज्ञान अपनी सर्वोच्च अभिव्यक्ति परम प्रभु के अनन्त प्रेम में कर रहा है। परम आनन्द की अभिव्यक्ति परम प्रभु के अनन्त सौन्दर्य के रूप में होती है। आत्मा का सर्वोपरि आकर्षण वहीं है''

अतः उपरोक्त विवेचन के आधर पर यह कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानन्द ने अन्य भारतीय दार्शनिकों की तरह परम सत्य या सर्वोच्च सत्ता ब्रह्य को ही माना है। विवेकानन्द ने जिस वेदान्त के ब्रह्य को ग्रहण किया है वह न तो हेगले का स्थूल परम तत्व है, न माध्यमिकों का शून्य और न योगचारियों का आलय विज्ञान है।

ईश्वर के विषय में दृष्टिकोण

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं– ''ईश्वर एक वृत है जिसकी परिधि कहीं नहीं है और केन्द्र सर्वत्रा है। उस वृत में प्रत्येक बिन्दु सजीव, सचेतन, सक्रिय और समान रूप में क्रियाशील है। हम सीमित आत्माओं में केवल ,क बिन्दु सचेतन है और वह केन्द्र आगे पीछे गतिशील रहता है। जिस प्रकार विश्व की तुलना में शरीर की सत्ता अत्यल्प है उसी प्रकार ईश्वर की तुलना में समस्त विश्व कुछ नहीं है। जब हम कहतें है, ईश्वर बोलता है, तो इसका अर्थ यह है के वह अपनी सृष्टि के माध्यम से बोलता है। जब हम उसका वर्णन उस देश काल से परे रहकर करते हैं तब हम कहतें हैं कि वह निगुर्ण सत्ता है। किन्तु वह रहता वही सत् है। उपरोक्त विवेचन के आधर पर हम कह सकते है कि विवेकानन्द आचार्य शंकर के समान सगुण ईश्वर की मान्यता का समर्थन करते हैं। वे कहतें हैं ''जब तक हमारा शरीर है, तब तक हम स्थूल जगत की स्थूल जगत की ओर दृष्टि किये हुए है, तब तक हमें सगुण ईश्वर को स्वीकार करना ही होगा। ऐसी अवस्था में ईश्वर को स्वीकार न करना निरा पागलपन है।'' संसार के अध्किांश व्यक्ति द्वैतवादी है। ऐसे व्यक्ति जो साधरण बुद्धि के हैं, निर्गुण ब्रह्य की धरणा को ग्रहण करने में असमर्थ है।'' अतः एक व्यक्ति विशेष के रूप में ईश्वर की उपासना किये बिना मनुष्यों का काम नहीं चलता। वेदांत दर्शन का एक ही उद्देश्य है और वह है एकत्व की खोज।

आत्मा के विषय में दृष्टिकोण

स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि ''ईश्वर प्रकृति एंव आत्मा का एक रूप है। मानव जीव और प्रकृति तथा आत्मा उसके शरीर है। जिस तरह मेरा एक शरीर है, एक आत्मा है उसी तरह सम्पूर्ा विश्व एवं सारी आत्मायें ईश्वर के शरीर है और ईश्वर सारी आत्माओं की आत्मा है। शरीर परिवर्तित हो सकता है, तरूण या बृद्ध सबल या दुर्बल किन्तु इससे आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक ही सास्वत सत्ता शरीर के माध्यम से सदा अभिव्यक्त होती है। जगत रूपी उपादान से वह सृष्टि करता है और हर कार्य के रूप में उसका शरीर सूक्ष्म होता है वह संकुचित होता है पिफर परवर्ती कल्प के रूप में वह विस्तृत होने लगता है और उससे विभिन्न जगत निकलते है'' परन्तु वर्तमान में कुछ लोग ही सत्य की जिज्ञासा करते हैं। उससे भी कम सत्य को जानने को साहस करते हैं और सबसे कम सत्य को जानकर हर प्रकार से उसको कार्य रूप में परिणित करते है। यह उनका दोष नहीं है बल्कि उनके मस्तिष्क का दोष है। हर नया विचार खासकर उच्च कोटि के लोगों को अस्त व्यस्त कर देता है। उनके मस्तिष्क में नया मार्ग बनाने लगता है और उनके सन्तुलन को नष्ट कर देता है। स्वामी विवेकानन्द ने यह घोंषणा की है कि ''ब्रह्य ही हमारी वास्तविक आत्मा है।'' विवेकानन्द ने विज्ञान का उदाहरण देकर भी यही सिद्ध किया है कि ''ब्रह्य हम सभी की आत्माओं में अपने को अभिव्यक्त करता है। वे उफर्जा के नाश होने वाले नियम का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि विश्व में उफर्जा की मात्रा सदैव समान रहती है। उसका केवल रूप ही बदलता है। इसी प्रकार एक रेंगतें हुए कीड़े से लेकर मनुष्य की आत्मा तक को वही एक ब्रह्य अभिव्यक्त करता है। प्रश्न केवल अभिव्यक्ति की मात्रा का है'' ''आत्मा शुद्ध स्वभाव एंव पूर्ण है। पूर्णानन्द और ऐश्वर्य ही उसका स्वभाव है, दःख या अनैश्वर्य नही। सत् चित् एवं आनन्द का स्वरूप है, उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। हम जो संसार में तमाम अभिव्यक्तियों को देखते है, वे आत्मा के ही विभिन्न रूप मात्रा है। जन्म–मृत्यु, क्षय–बुद्धि, उन्नति–अवनति सब कुछ उस एक अखण्ड सत्ता की ही विभिन्न अभिव्यक्तियॉं है। इसी प्रकार हमारा साधरण ज्ञान भी वह चाहे विद्या अथवा अविद्या किसी भी रूप में प्रकाशित क्यों न हो उसी चित का उसी ज्ञान स्वरूप का प्रकाश है। विभिन्नता प्रकाशगत न होकर केवल परिमाणगत ही है।'' भारत में भी सभी विभिन्न समुदायों में आत्मा का लक्ष्य एक ही प्रतीत होता है। उन सब में एक ही धरणा मिलती है और वह है मुक्ति की। विवेकानन्द ने भी कहा है कि ''आत्मा का एक ही लक्ष्य है मुक्ति'' वे कहते है कि ''मुक्ति को प्राप्त करने में वह जिन समस्त क्रमागत सोपानों में व्यक्त होती है तथा जिन समस्त अनुभवों के मध्य गुजरती है, वे सब उसके जन्म माने जाते हैं। आत्मा एक निरन्तर देह धरण करके उसके माध्यम से अपने को व्यक्त करने का प्रयास जैसा करती है। वह उसको अपर्याप्त पाती है, उसे त्यागकर एक उच्चतर देह धरण करती है। उसके द्वारा वह अपने को व्यक्त करने का प्रत्यन करती है। वह भी अपर्याप्त पायी जाने पर त्याग दी जाती है और एक उच्चतर देह आ जाती है। इसी प्रकार यह क्रम एक ऐसा शरीर प्राप्त हो जाने तक निरन्तर चलता रहता है, जिसके द्वारा आत्मा अपनी सर्वोच्च महत्वाकांक्षाओं को व्यक्त करने में समर्थ हो पाती है। तब आत्मा मुक्त हो जाती है।'' ''स्वामी जी ने दृष्टि के जिस क्रम को स्वीकार किया है वह सांख्यदर्शन के अध्कि समीप है। समस्त जड़ पदार्थो का मूल उपादान कारण आकाश तत्व है और समस्त शक्तियों का मूल स्त्राोत प्राण हैं परन्तु आकाश और प्राण की उत्पत्ति 'महत' तत्व से हुई है।'' मन को जड़ कहते है। अतः अन्तिम तत्व चैतन्य ही है। उनका कथन है ''आजकल हम जिसे जड़ कहते है, उसे प्राचीन हिन्दु भूत अर्थात् बांझत्व कहते थे। उनके मतानुसार एक तत्व नित्य है, शेष सब तत्व इसी एक से उत्पन्न हुए है। इस मूल तत्व को ''आकाश'' की संज्ञा प्राप्त है। ''आजकल ईश्वर शब्द से जो भाव व्यक्त होता है, यह बहुत कुद उसके सदृश है, यद्यपित पूर्णतः नहीं। इस तत्व के साथ प्राण नाम की आद्य उफर्जा रहती है। प्राण और आकाश संघटित और पुलस्संघटित होकर शेष तत्वों का निर्माण करते हैं। कलपान्त में सब कुछ प्रलयगत होकर आकाश और प्राण में प्रत्यावर्तन करता है।'' स्वामी विवेकानन्द ने सत्कार्यवाद को माना है। वे कहते हैं कि ''कारण और कार्य अभिन्न है– कार्य केवल कारण का रूपान्तर मात्रा है। अतएव वह समुदाय ब्रह्याण्ड शून्य मे से उत्पन्न नही हो सकता। बिन किसी कारण के वह नहीं आ सकता, इतना ही नहीं कारण के कार्य के भीतर सूक्ष्म रूप से वर्तमान है। ''एक छोटे से उद्भिद् को ही लो। मनुष्य देखता है कि उद्भिद् धीरे–धीरे मिट्टी को पफोड़कर उगता है, अन्त में बढ़ते–बढ़ते एक विशाल वृद्धा हो जाता है, फिर वह नष्ट हो जाता है – केवल बीज छोड़ जाता है। वह मानो घूम फिर कर एक वृत्त पूरा करता है। बीज से ही वह निकलता है, फिर वह वृद्धा हो जाता है और उसके बाद फिर से बीज में परिणित हो जाता है।'' वे कहते हैं, ''इसी प्रकार हमारे

चारों ओर स्थित प्रकृति की सारी वस्तुओं के सम्बन्ध में यही नियम है। हम जानते है कि आज हिमानी और नदियां बड़े–बड़े पर्वतों पर कार्यशील हैं, और उन्हें धीरे–धीरे परन्तु निश्चित रूप से चूर–चूर कर रही हैं, चूर–चूर कर उन्हें बालू कर रही है। फिर वही बालू बहकर समुद्र में जाती है– समुद्र में स्तर पर स्तर जमती ही जाती है और अन्त में पहाड़ की भांति कड़ी होकर भविष्य में पर्वत बन जाती है। वह पर्वत फिर से पिसकर बालू बन जायेगा। बस यही कम है। बालू से इन पर्वत मालाओ की उत्पत्ति होती है और बालूका में ही उनकी परि.ाति है। इस प्रकार कार्य और कारण अभिन्न हैं– भिन्न नहीं, कारण ही एक विशेष रूप धरण करने पर कार्य कहलाता है।''

माया और भ्रम के विषय में दृष्टिकोण

हम वेद में ऐसा वाक्य पाते है कि इद (ID) ने माया द्वारा नाना रूप धरण किये हैं यहॉ पर माया जाल का अर्थ इन्द्र जाल से हुआ। श्वेताश्रोपनिषद के अनुसार–''माया को ही प्रकृति समझों, माया के शासक को स्वयम् ईश्वर जानो'' ''माया तू प्रकृतिम् विद्यान्माः यिनम तु महेश्वरम्'' परन्तु सब हिन्दू कहते है कि संसार एक माया है तो यह आशय निकलता है कि संसार एक भ्रम है। किन्तु वेदों ने माया का जो रूप दिया है वहन तो विज्ञान वाद है और न ही याथर्थ वाद है। वह तो तथ्यों का सहज वर्णन मात्रा है। अर्थात माया और भम्र एक दूसरे की देह और साया के अनुरूप है। जगत में महिमा का हिर.मय मेध् जाल ही माया है।

हम जीवन के अनन्त सागर में अपना मार्ग बनाते हैं इसी प्रकार हम चलते रहते है और अन्त में मृत्यु आकर हमे इस क्षेत्र से उठा ले जाती हैं विजय अर्थात् पराजित कुछ भी निशचित नहीं है यही माया है

सारे जीवन भर जैसे–जैसे वह अग्रसर होता है वैसे–वैसे उसका आदर उससे दूर होता चला जाता है और अन्त में मृत्यु आ जाती हैं– यहीं माया है। इन्द्रियां मनुष्य की आत्मा को बाहर खींच लाती हैं मनुष्य `,से स्थानों में सुख और आनन्द की खोज करता है जहॉ वह उन्हें कभी नहीं पा सकता है। यहीं कम चलता रहता है और अन्त में लूले लंगड़े होकर, धेखा ख्य शुखों मे रत रहकर उसे भूल जाने की चेष्टा कर रहे हैं –यही माया है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि ''माया न तो विज्ञानवाद है, न ही वस्तुवाद। वह कोई मतवाद भी नहीं है। वह तो समस्त जगत् की, जिनको हम देख रहे है, घटनाओं का सहज वर्णन मात्रा है। ''सर्वशक्तिमान मनुष्य की शक्तियों को कुण्ठित कर देती है, जो उसे स्वरूप से च्युत कराकर ब्राह्य विषयों में, मृगमरीचिकाओ में भटकने को विवश कर देती है, जो एक युवक के एक वैज्ञानिक के समस्त उल्लास, उमंग, उत्साह, और आशाओं पर तुषारपात कर देती है वही शक्ति माया है।'' जिस शक्ति से भिन्न–भिन्न व्यक्तियों का सृजन होकर पर्याप्त बोध् हो रहा है, जिससे विभिन्नताएं एंव विविध्ताएं प्रतीत हो रही हैं, जिससे ''यह माया वस्तुतः नामरूप के सिवाय कुछ नहीं है। यदि नाम रूप का त्याग कर दिया जाय तो परमतत्व ही अवशिष्ट रह जायेगा। जो भी पार्थक्य और परिवर्तन प्रतीत होता है वह उस नाम रूप के कारण ही होता है। इसी को दूसरे शब्दों में देश काल व निमित्त कहते हैं। ''माया का कारण क्या है, इस प्रश्न के विषय के विवेकानन्द कहते हैं कि ''यह प्रश्न विरोधभासयुक्त है। एक अनन्त और निरपेक्ष तत्व को स्वीकृत कर लेने पर माया की उत्पत्ति का प्रश्न नहीं किया जा सकता। ब्रह्य के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु सदृश्य है ही नहीं जिसको माया का कारण माना जाए। परन्तु ब्रह्य को भी माया की उत्पत्ति का कारण नहीं माना जा सकता क्योंकि यह कार्य– कारण सम्बन्ध से परे है। कार्य कारण से परे क्यों, यह पूछना ही असंगत है।'' अतः इस विषय में केवल यहीं कहा जा सकता है कि माया का कारण माया ही है।

जीव के विषय में स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिकोण

स्वामी विवेकानन्द विषय और विषयी माया अथवा ब्रह्य ग्रन्थ को ही जीव मानते हैं वह कहते हैं ''कीट से लेकर मनुष्य तक जितने स्वरूप दिखते है सभी 'शिकागो हिन्डोले' के डिब्बों की तरह है। वह हिन्डोला हमेशा घूमता रहता है पर उस पर बैठने वाले बदलते रहते है कोई मनुष्य किसी डिब्बे में घुसता है, हिन्डोले के साथ घूमता है और पिफर बाहर निकल आता है किन्तु हिन्डोंला घूमता ही रहता है इसी प्रकार कोई जीव इस शरीर में प्रवेश करता है, उसमें कुछ समय के लिए निवास करता है, पिफर उसे छोड़कर दूसरे शरीर को धरण करता है, और उसे भी छोड़कर अन्य शरीर में प्रवेश कर जाता है। यह चक्र चलता रहता है जब तक जीवन इस चक्र से बाहर आकर मुक्त नहीं हो जाता है।''

विवेकानन्द जी कहते है ''जब स्वरूप का बोध होता है, नाम रूप का लोप हो जायेगा जब जीव आदि की स्वतन्त्रा सत्ता का अनुभव नहीं होगा, स्वामी जी स्वीकार करते है कि यदि जीव सुखी एवं दुःखी है तो स्वयं के कर्मो के कारण ही है। जीव ही कारण है और जीव ही कार्य है''

इस प्रकार जीवन स्वतन्त्रा है वह मनुष्य की इच्छा शक्ति के अधीन नहीं है। जीव के विषय में स्वामी विवेकानन्द का विश्वास है कि–

नैनं छिदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति माल्यतः।।

अर्थात जीव वह आत्मा का स्वरूप है जिसको न ता शस्त्रा काट सकते है। न अग्नि जला सकती है। न जल भिगों सकता है और न ही समीर सुखा सकती है। विवेकानन्द उपनिषदों के इन वाक्यों को सही मानते है ''वह जो आपकी आत्मा का सार है, वहीं सत् है। वही आत्मा है, तुम वह हो, जो स्वेतकेतु।''

इसका अर्थ यह हुआ कि तुम ईश्वर हो इस प्रकार जीव और ब्रह्य के सम्बन्ध के विषय में भी विवेकानन्द अैत वेदान्तियों का ही अनुशरण करते है। उनके अनुसार ईश्वर और जीव में कोई भेद नहीं है। यह क्षुद्र शरीर का संचालक होता है जो शरीर परिवर्तन होने पर दूसरी भूमिका अदा करते है।

मूर्तिवाद तथा अन्ध विश्वास के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिकोण

वे मूर्ति पूजा के आचोलक नहीं थे। उनका विश्वास थ कि अन्ध विश्वास मनुष्य का महान शत्रु है पर ध्र्मान्ध्ता तो उससे भी बढ़कर है। इसाई गिरजाघर क्यों जाता है? कूस क्यों पवित्र है? प्रार्थना के समय आकाश की ओर मुॅह क्यों किया जाता हैं? गिरजाघरों में इतनी मूर्तियां क्यों होती हैं? मेरे भाइयों मन में किसी मूर्ति के बिना आये कुछ सोच सकना उतना ही असम्भव है जितना स्वास लिये बिना जीवित रहना इसलि, तो हिन्दू अराधना के समय ब्राह्य प्रतीक का उपयोग करते हैं। परन्तु वर्तमान इति को ध्यान रखतें हुए कहते है। कि मनुष्य को कहीं पर रूकना नहीं चाहिए। परन्तु शास्त्राों के विषय में वे दर्शाते हैं कि शास्त्रा कहते है कि ब्राह्य पूजा, मूर्ति पूजा सबसे नीचे की अवस्था है। आगे बढ़ने का प्रयास करते समय मानसिक प्रार्थना साध्ना की दूसरी अवस्था है और सबसे उच्च अवस्था तो वह है–जब परमेश्वर का साक्षात्कार है।

उत्तमों ब्रह्य सद्भाव ध्यान भावस्तु माध्यमः।
स्तुतिर्जयोअध्मों भावों वहिः पूजा अध्मामध्मा।।

इसी प्रकार सूर्य और चन्द्र के विषय में मूर्ति जगत की वह तुलना अपने शब्दों में इस प्रकार से देखतें है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीमद्भगवत्गीता रहस्य : लोकमान्य बालंगाधर तिलक, हि–अनु– माध्वराव स्प्रे, 1948, नवजीवन प्रिन्टिंग प्रेस, पूना।
2. ईशादि–दशोपनिषद् और शंक भाष्य, वाणि विलास, संस्कृत पुस्तकालय, काशी।
3. मानविकी पारिभाषिक कोश, बी–एम–नरवणे, राजकमल प्रकाशन प्राइ.मि., दिल्ली 1966।
4. संस्कृति के चार अध्याय, रामधरी सिंह दिनकर, उदयाचल राष्ट्रकवि दिनकर पथ, राजेन्द्र नगर, पटना, 1977।
5. शिक्षा, संस्कृति और समाज, विवेकानन्द, प्रभात प्रकाशन, 205, चावड़ी बाजार, दिल्ली, 1959।
6. स्वाधिन भारत! जय हो! राकमृष्ण आश्र, नागपुर, 1964।
7. विवेकानन्द चरित्रा, सत्येन्द्र नाथ मजूमदार, रामकृष्ण, नागपुर, 1971।
8. विवेकानन्द संचयन, श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, 1964।
9. विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खण्ड, अद्वैत आश्रम मायावती, अल्मोड़ा, जन्मशती संस्करण, 1963।
10. विवेकानन्द साहित्य, क्षितीय खण्ड, अद्वैत आश्रम मायावती, अल्मोड़ा जन्मशती संस्करण, 1963।
11. विवेकानन्द साहित्य, चतुर्थ खण्ड, अद्वैत आश्रम मायावती, अल्मोड़ा जन्मशती संस्करण, 1963।
12. For in the absolute [there is neither time] space nor ausation- It is all one [that on exists by itselfan nothave any cause the bsolute and menifestation] lecture delivered in Lonon in 1896.